BODHIVRUKSHA JOURNAL OF DIVERSE DISCIPLINE
E-ISSN : 3139-1486
An Open Access, Peer-Reviewed, Multidisciplinary Scholarly Journal
Bi-monthly | Multilingual (English, Hindi, Marathi) | Academic Research

@2026 Volume 2, Issue 4 (July-August) https://bjddjournal.org/ (E-ISSN : 3139-1486)

वैदिक साहित्य के आलोक में नारी की सामाजिक, धार्मिक एवं बौद्धिक स्थिति का अध्ययन

वैष्णवी जादौन
E-mail: vaishnaveejadaun123@gmail.com

सारांश

वैदिक भारत विश्व गुरु था, जिससे दुनिया को ज्ञान के प्रकाश की प्रथम किरण प्राप्त हुई। यह देव भूमि कहलाता था। "जब दुनिया में मनुष्य अपनी रंगी हुई देह पर कच्ची खाल पहनते थे और जंगलियों की भाँति घूमा करते थे इतिहास के उस पुराने काल में भी भारत अत्यंत उच्च कोटि की सभ्यता का आनंद ले रहा था।"(लॉर्ड मैकौले, इंडिया मदर ऑफ अस ऑल; पेज. 27)

संसार को लौकिक और पारलौकिक ज्ञान से अभिभूत करने वाला, वेदों का प्रणेता, प्राणीमात्र में ईश्वरीय चेतना का दर्शन करने वाला यह देश आखिर अपने ज्ञान, वैभव, सभ्यता व संस्कृति को अक्षुण्ण क्यों नहीं रख सका? ऐसे आदर्श समाज की अवनति व पराभव के क्या कारण रहे?

वास्तव में जो देश अपनी सभ्यता और संस्कृति से कट जाता है वह नष्ट हुई जड़ वाले वृक्ष की गति को प्राप्त होता है। जैसे जड़, तना और पत्तियाँ एक दूसरे के संपोषक हैं उसी तरह राष्ट्र, संस्कृति और समाज एक दूसरे के संपोषक हैं। देश, राज्य, जनपद, नगर और ग्राम के बाद परिवार समाज की लघुतम इकाई होता है। और परिवार की इकाई होता है मनुष्य। मनुष्यों में स्त्री और पुरुष दोनों का प्रत्येक दृष्टि से समान महत्त्व है। किसी एक वर्ग की उपेक्षा परिवार व समाज से लेकर राष्ट्र तक में असंतुलन उत्पन्न कर देती है। भारत को इसी असंतुलन का ग्रहण लगा। क्योंकि भारतीय दृष्टि सर्व समावेशी है इसीलिए अन्य सभ्यताओं व संस्कृतियों ने भारतीय संस्कृति पर अपना प्रभाव आसानी से छोड़ दिया जिससे समाज में अनेक कुरीतियों ने जन्म ले लिया और इनमें से एक महत्वपूर्ण कुरीति थी नारी की उपेक्षा तथा उसके अधिकारों का पुरुषों द्वारा अतिक्रमण। यह अतिक्रमण इस स्तर तक आ गया कि गोस्वामी तुलसीदास जी को लिखना पड़ा –

"कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं॥"

मैथिली शरण गुप्त ने कहा –

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी। आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥ "

अस्तु इस शोध पत्र का उद्देश्य यह है कि यदि वैदिक भारत में नारी की स्थिति का अध्ययन किया जाए तो वर्तमान युग में नारी सशक्तीकरण को समुचित पथ-प्रदर्शन प्राप्त होगा।

Type : Research Article
Language: Hindi

Received: 10 July 2026
Revised: 12 July 2026
Accepted: 14 July 2026
Published: 15 July 2026
https://doi.org/10.5281/zenodo.21350624

Cite this article:
वैष्णवी जादौन.(2026) वैदिक साहित्य के आलोक में नारी की सामाजिक, धार्मिक एवं बौद्धिक स्थिति का अध्ययन.BODHIVRUKSHA JOURNAL OF DIVERSE DISCIPLINE (BJDD), Vol. 02, Issue 04, pp. 34-42.
ISSN: 3139-1486 (Online)

BODHIVRUKSHA JOURNAL OF DIVERSE DISCIPLINE
E-ISSN : 3139-1486
An Open Access, Peer-Reviewed, Multidisciplinary Scholarly Journal
Bi-monthly | Multilingual (English, Hindi, Marathi) | Academic Research

@2026 Volume 2, Issue 4 (July-August) https://bjddjournal.org/ **(E-ISSN : 3139-1486)**

(**मुख्य शब्द:** वैदिक विश्वगुरु भारत, नारी गरिमा, नारी सशक्तीकरण, भारतीय सभ्यता व संस्कृति)

प्रस्तावना

आज हम अपने समाज में अनेक विकृतियाँ देखते हैं। जाति, मत-संप्रदाय, मज़हब, भाषा, क्षेत्र, रंग तथा लिंग आदि का भेदभाव व्यापक रूप से समाज में दृष्टिगोचर होता है। समाज ही नहीं परिवार में भी कुछ भेदभाव व्यवहृत होते हैं, जिनमें लिंग भेद एक बड़ी सामाजिक-पारिवारिक समस्या है। स्त्री-पुरुष का यह भेद प्राचीन काल से ही समाज में व्याप्त है अथवा बाद में कुरीति के रूप में उत्पन्न हुआ? इस तथ्य पर विचार करने के लिए हमें अपने प्राचीन साहित्य और इतिहास का अवलोकन करना होगा। "समस्त संसार इस तथ्य को स्वीकार करता है कि यदि किसी भी राष्ट्र की सभ्यता के बारे में सही जानकारी प्राप्त करनी है तो उस देश या राष्ट्र में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन कीजिये।"[i]ऐसा इसलिए कहा गया है क्योंकि स्त्री जन्मदात्री है, प्रथम गुरु है, भावी पीढ़ी में संस्कारों की आधारशिला रखती है। इसीलिए माता को निर्माता कहा गया है। माता की स्थिति पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक रूप से जितनी सशक्त होगी भावी पीढ़ी में संस्कार और आदर्श उतने ही उत्कृष्ट होंगे। इसके विपरीत माता की हीन दशा भावी पीढ़ी में हीनता का संचार कर देती है। परिवार से ही समाज बनता है अतः समाज में भी हीनता का बोध होगा। इसलिए किसी भी समाज में नारी का सशक्त होना परम आवश्यक है। हमारे वर्तमान समाज में नारी की स्थिति पिछले एक-डेढ़ दशक से काफी सुधरी है परंतु अभी भी अपेक्षित स्थिति नहीं आयी है। समय-समय पर जिस तरह हृदय-विदीर्ण कर देने वाली घटनाएँ सामने आती हैं तो मन व्यथित हो उठता है। आखिर पुरुष की नारी के प्रति यह निकृष्टतम सोच कैसे दूर हो? एक सभ्य समाज में पशुता की हद पार कर देने वाली सोच को कैसे स्थान दिया जा सकता है? अतः मनुष्य को अपने स्वर्णिम अतीत से ही प्रेरणा प्राप्त करनी होगी। क्योंकि भारत के ही नहीं अपितु संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद हैं इसलिए वैदिक काल में नारी की स्थिति का विश्लेषण वेदों के आधार पर करना ही समीचीन होगा। इस शोधपत्र में हम नारी के जन्म और शैशव, शिक्षा-दीक्षा और विवाह, पारिवारिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, राजनीतिक स्थिति और आध्यात्मिक स्थिति का अनुशीलन करेंगे।

जन्म और शैशव

यह ध्रुव सत्य है कि जन्म और मृत्यु पर किसी का वश नहीं होता। कोई भी बच्चा जब जन्म लेता है तो स्त्री या पुरुष होना न तो उसके स्वयं के वश में है और न ही उसके जन्मदाताओं के। यह सम्पूर्ण संसार प्रकृति के नियंत्रण में ही गतिमान है और प्रकृति सभी तरह का संतुलन स्वयं ही बनाती है। किन्तु मनुष्य जब स्वयं को प्रकृति का नियंता समझने लगता है तब वह प्रकृति को स्वयं के विचारों के अनुकूल चलाना चाहता है। मनुष्य का हस्तक्षेप सदैव असंतुलन ही पैदा करता है। मनुष्य इतनी छोटी-सी बात पशु-पक्षियों से भी नहीं सीख पाया है। पशु-पक्षी तक अपने बच्चों में नर-मादा के भेद के आधार पर किसी एक की हत्या नहीं करते किन्तु बुद्धिमान मनुष्य जन्म से पहले ही लिंग भेद के आधार पर कन्या भ्रूण-हत्या तक कर देता है।

अथर्ववेद एवं संहिताओं में भ्रूण-हत्या की घोर निंदा की गयी है।[ii] "ऐसी दशा में यदि कन्या हत्या की प्रथा प्रचलित होती तो उसकी भी निंदा की जाती परंतु उनमें उसका कहीं संकेत भी नहीं मिलता।"[iii] ऋग्वेद में कन्या का स्थान आदरणीय बताया गया है। माता-पिता के वक्ष स्थल पर लेटी हुई अबोध कन्याओं का वर्णन कदापि उनकी हेयता सिद्ध नहीं करता।[iv] माता-पिता द्वारा अनेक पुत्र-पुत्रियों के दीर्घायु होने की कामना की गयी है।[v] यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि केवल पुत्रों के लिए ही नहीं अपितु पुत्रियों की भी कामना की गयी है। इससे स्पष्ट है कि कन्याएँ उपेक्षित, अनादृत अथवा हेय नहीं समझी जाती थीं। एक स्थान पर तर्कश की प्रशंसा बहुपुत्रीक पिता के रूप में की गयी है।[vi] और यह प्रशंसा पिता के आदर की सूचक है। बृहदारण्यक उपनिषद में तो कन्या के जन्म के लिए कतिपय विधि-नियमों कि व्यवस्था की गयी है।[vii]

BODHIVRUKSHA JOURNAL OF DIVERSE DISCIPLINE
E-ISSN : 3139-1486
An Open Access, Peer-Reviewed, Multidisciplinary Scholarly Journal
Bi-monthly | Multilingual (English, Hindi, Marathi) | Academic Research
@2026 Volume 2, Issue 4 (July-August) https://bjddjournal.org/ (E-ISSN : 3139-1486)

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि वैदिक काल में जन्म के आधार पर पुत्र-पुत्री में भेदभाव नहीं किया जाता था। पुत्रियों को भी पुत्रों कि तरह लाड़-दुलार मिलता था। माता-पिता पुत्री की कामना के लिए भी विधि-विधान करते थे। और उसके सम्पूर्ण जीवन को 16 संस्कारों में निबद्ध किया जाता था।

शिक्षा-दीक्षा और विवाह

वैदिक काल में शिक्षा का अर्थ व्यापक रूप में लिया जाता था। उसके अंतर्गत स्त्री-शिक्षा का भी विशेष महत्त्व था। स्त्री-शिक्षा में उसके शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास की पूर्ण योजना थी। बालिकाओं का बालकों की तरह उपनयन संस्कार होता था। उनका ब्रह्मचर्यकाल इसी के लिए आयोजित था। ऋग्वेद[viii] तथा अथर्ववेद[ix] में प्रत्येक स्त्री के चार पुरुष बताए गए हैं- 1. सोम, 2. अग्नि, 3. गन्धर्व और 4. वास्तविक पुरुष (जिसके साथ उसका विवाह होता था)। यह एक ऐसी शिक्षा तकनीकि है जिसके गूढ़ बौद्धिक-सांस्कृतिक रहस्य हैं। इसके द्वारा विवाह के पूर्व कन्या के व्यक्तित्व में विविध गुणों के समावेश की कल्पना की गयी है। वह काल जिसमें उसका काल्पनिक पति सोम है, उसके सौंदर्य एवं संस्कृति के विकास की व्यवस्था है। दूसरे काल्पनिक पति अग्नि के निमंत्रण में वह चारित्रिक शुद्धता एवं याज्ञिक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करती है। यह उसके व्यक्तित्व विकास की द्वितीय अवस्था है। तृतीय अवस्था में उसका काल्पनिक पति गन्धर्व होता है। इस काल में वह विविध ललित कलाओं यथा संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि की शिक्षा प्राप्त करती है। इस प्रकार इन तीन अवस्थाओं का अतिक्रमण करने के पश्चात वह एक सुसंस्कृता, सुशिक्षिता कन्या बन जाती है। उसमें संस्कृति, धर्म, विज्ञान, की समस्त अवधारणाएँ आविर्भूत हो जाती हैं। जिनकी उसे गृहस्थ, सामाजिक, राजनीतिक व आध्यात्मिक जीवन में आवश्यकता होती है। इस व्यक्तित्व निर्माण के पश्चात उसका योग्य व्यक्ति से विवाह होता है और यही उसका वास्तविक पति होता है। शिक्षा का उपर्युक्त क्रम कोरी कल्पना न थी। स्त्री-शिक्षा के अंतर्गत जो विभिन्न विषय समय-समय पर अध्यापित होते थे इनमें 64 कलाओं के अध्ययन की योजना समाहित होती थी।[x]

ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर कन्या को युवती के रूप में प्रदर्शित किया गया है।[xi] ऋग्वेद में गाय दुहती हुई तथा दही और मक्खन तैयार करती हुई कन्याओं का वर्णन मिलता है।[xii] इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में बाल-विवाह की प्रथा नहीं थी। कन्या का विवाह वयस्कावस्था में होता था। अथर्ववेद में ऐसे मंत्रों और विधि-नियमों का उल्लेख है जिनकी सहायता से स्त्री अथवा पुरुष अपने अभीष्ट व्यक्ति को प्राप्त करने की चेष्टा किया करते थे। ऋग्वेद में कहा गया है कि 'सुदर्शना' एवं अलंकृता होने पर कन्या स्वयं पुरुषों में से अपना साथी चुन ले।[xiii] स्वयंवर की इस प्रणाली से स्पष्ट है कि कन्याओं का विवाह युवावस्था में ही होता था। घोषा और सूर्या का विवाह पर्याप्त आयु में हुआ था।

ऋग्वेद काल में विवाह एक पवित्र एवं उच्च संस्कार समझा जाता था। इसका ध्येय नर-नारी को गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना था।[xiv] घर में नारी का विशेष महत्त्व और सम्मान था। इसी से पत्नी की प्रशंसा में उसे 'गृह' का अलंकरण[xv] अथवा स्वयं गृह कहा गया है।[xvi] वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के लिए विवाह कदाचित आवश्यक तो समझा जाता था किन्तु अनिवार्य नहीं था। ऋग्वेद में अनेक कन्याओं के उदाहरण हैं जो दीर्घकाल पर्यन्त अथवा जीवन पर्यन्त अविवाहित अवस्था में अपने माता-पिता के साथ रहती थीं।[xvii] ऐसी कन्याओं को "अमाजूः" कहते थे।[xviii]

विवाह के संबंध में महत्वपूर्ण प्रश्न जातीयता एवं अंतर्जातीयता का है। वैदिक कालीन समाज में वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी। स्वतंत्र सामाजिक वातावरण में कन्याओं का विवाह वयः प्राप्ति पर होता था और विवाह के लिए उनकी सहमति अथवा स्वीकृति भी आवश्यक होती थी। गांधर्व विवाह का प्रचलन था और अंतर्जातीय विवाह में कोई प्रतिबंध न था। ऋग्वेद में ब्रह्मर्षि श्वाश्व तथा राजा रथवीति दार्म्य की कन्या के विवाह का उल्लेख है।[xix] इसी प्रकार ब्राह्मण विमद तथा राजा पुरुमित्र की कन्या कमद्यु का विवाह अंतर्जातीय विवाह का उदाहरण है।[xx] एक और प्रमुख दृष्टांत महर्षि कक्षीवान तथा रोमशा का है।[xxi]

BODHIVRUKSHA JOURNAL OF DIVERSE DISCIPLINE
E-ISSN : 3139-1486
An Open Access, Peer-Reviewed, Multidisciplinary Scholarly Journal
Bi-monthly | Multilingual (English, Hindi, Marathi) | Academic Research
@2026 Volume 2, Issue 4 (July-August) https://bjddjournal.org/ (E-ISSN : 3139-1486)

महर्षि अंगिरस की पुत्री शाश्वती का विवाह राजा अंगस के साथ हुआ था।[xxii] इसी प्रकार महर्षि शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का विवाह राजा ययाति के साथ हुआ था।[xxiii] यहाँ पर यह तर्क आ सकता है कि यह तो समाज के अभिजात्य वर्ग की बातें हैं, क्या ये व्यवस्थाएं जन सामान्य में भी लागू थीं? जन सामान्य का तो वर्णन नहीं मिलता? इसका उत्तर यही है कि

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन: । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥"[xxiv]

अर्थात श्रेष्ठ मनुष्य जैसा आचरण करता है अन्य लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाणित कर देता है समस्त मनुष्य-समुदाय उसी के अनुसार व्यवहार करता है।

अतः हम कह सकते हैं कि वैदिक काल में स्त्री-शिक्षा का भी विशेष महत्त्व था। बालिका शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व-विकास को ध्यान में रखकर शिक्षा व्यवस्था प्रचलित थी। उन्हें विविध विषयों और कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। युवावस्था में विवाह होने के कारण कन्याओं को शिक्षा-दीक्षा हेतु पर्याप्त समय मिल जाता था। गृहकार्य संबंधी होने के साथ-साथ यह शिक्षा सर्वतोमुखी होती थी। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य स्त्री को श्रेष्ठ मानवी बनाना था।

वैदिक काल में कन्या का विवाह प्रायः 16-20 वर्ष की आयु में होता था। कन्या को अपना वर चुनने की अथवा विवाह की सहमति या असहमति का अधिकार होता था। विवाह अनिवार्य भी नहीं था। अन्तर्जातीय विवाहों में अनुलोम और प्रतिलोम दोनों प्रकार के विवाहों का प्रचलन था। विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता था जिसका उद्देश्य आध्यात्मिक उच्चादर्शों की स्थापना और सामाजिक दायित्वों की पूर्ति था।

पारिवारिक स्थिति

विवाहोपरांत वर-वधू का जीवन पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति के लिए समर्पित होता था। घर में नववधू को श्वसुर गृह में एक साम्राज्ञी के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता था।[xxv] गृहिणी गृह में गरिमामयी भूमिका निभाती थी। ऋग्वेद में उसी मंत्र में आगे कहा है- 'हे वधू! तुम सास-श्वसुर, ननद और देवरों पर प्रेम का साम्राज्य स्थापित करो। तुम महारानी की प्रतिष्ठा प्राप्त करो। सब तुम्हारे प्रेमानुशासन से लाभान्वित हों'।[xxvi]

अथर्ववेद में भी वर्णन है "पति-पत्नी से कहता है- देवताओं ने गृहपति कार्यों के निर्वाह के लिए मुझे तुमको दिया है। धर्म के माध्यम से तुम मेरी पत्नी के धर्म का पालन करो और मैं तुम्हारे प्रजापति (गृहस्वामी) का।"[xxvii] वैदिक धर्म में सपत्नीक होना अनिवार्य माना गया है। बिना पत्नी के किसी धार्मिक कार्य की संपन्नता नहीं मानी जाती थी। उस पुरुष को यज्ञ का अधिकार नहीं था, जिसके पत्नी नहीं है। वैदिक काल में स्त्री-पुरुष का समान महत्त्व था। कोई किसी से हेय या कमतर नहीं था।[xxviii] "सम्पूर्ण देवगण हम दोनों के हृदयों को परस्पर संयुक्त करें। जल, वायु, धाता और सरस्वती हम दोनों को परस्पर सम्मिलित करें।"[xxix] "हमारे मन एक साथ हों, दाम्पत्य की यह भावना पुरुष और स्त्री के पारस्परिक सम्बन्धों को मधुर बनाती है जिसके समकक्ष संसार की किसी अन्य जाति के साहित्य में ऐसी सुंदर कल्पना नहीं मिलेगी।"[xxx]

अतः वैदिक काल में स्त्री का पारिवारिक जीवन बहुत ही गरिमामय होता था। वह पूरे परिवार की साम्राज्ञी होती थी। घर से तात्पर्य ही स्त्री हुआ करता था। परिवार में सभी उसका सम्मान करते थे। परिवार रूपी धुरी का एक चक्र पुरुष होता था तो दूसरा स्त्री। वह उपेक्षित नहीं थी। घर में बालक और बालिका में कोई भेद नहीं होता था।

सामाजिक स्थिति

वैदिक काल में हमारे समाज में एकपत्नीव्रत की प्रथा प्रतिष्ठित थी। ऋग्वेद में अधिकांश उदाहरण इसी कथन की पुष्टि करते हैं।[xxxi] स्त्री-पुरुष की अविच्छेदता एवं सम्बद्धयुग्मता के सुखपूर्ण जीवन का चित्रण एकपत्नी विवाह को ही परिलक्षित करता

BODHIVRUKSHA JOURNAL OF DIVERSE DISCIPLINE
E-ISSN : 3139-1486
An Open Access, Peer-Reviewed, Multidisciplinary Scholarly Journal
Bi-monthly | Multilingual (English, Hindi, Marathi) | Academic Research
@2026 Volume 2, Issue 4 (July-August) https://bjddjournal.org/ (E-ISSN : 3139-1486)

है।[xxxii] प्रायः सभी स्थानों पर यजमान एकपत्नी के साथ ही प्रदर्शित किया गया है। साथ ही कुछ ऐसे उदाहरण भी हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि बहुपत्नीक मनुष्यों का जीवन सपत्नियों की चिर प्रसिद्ध पारस्परिक ईर्ष्या के कारण दुखपूर्ण हो जाता है। इस स्वेच्छाचारिता से सामाजिक और पारिवारिक स्थिरता को आघात पहुंचता है। अतः इन दोषों को दूर करने के लिए सूत्रसाहित्य में एकपत्नीव्रत की व्यवस्था की गयी है।

यदि हम अपने वैदिक साहित्य का अवलोकन करें तो इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि तत्कालीन समाज में पर्दा प्रथा का अस्तित्व नहीं था। ऋग्वेद में एक स्थान पर उपस्थित लोगों से नव-विवाहिता वधू को देखने के लिए कहा गया है।[xxxiii] दूसरे स्थान पर यह शुभकामना दी गयी है कि वधू सभाओं में आत्मविश्वास से बोल सके।[xxxiv] अथर्ववेद में भी अलंकृता नारी के सभा में जाने का उल्लेख है।[xxxv]

ऋषीका शची कहती हैं-"मैं समाज में अग्रणी हूँ। मैं उच्च कोटि की वक्ता हूँ। मैं विद्वानों में मूर्द्धन्य हूँ। पति मेरे वचन का सम्मान करते हैं। मेरे पुत्र शत्रु के विजेता हैं। मेरी पुत्री तेजस्विनी है और मैं स्वयं विजयिनी हूँ।"[xxxvi] "यह बात अत्यंत विश्वास के साथ कही जा सकती है कि किसी भी प्राचीन सभ्यता में महिलाओं को इतना सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं था जितना सम्मानजनक स्थान उन्हें प्राचीन हिन्दू सभ्यता में प्राप्त था।"[xxxvii]

अतः दृढ़ता पूर्वक यह कहा जा सकता है कि वैदिक कालीन समाज में नारी की स्थिति अत्यंत सम्मानजनक थी। उसे पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे। कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि स्त्री को किसी भी तरह से पीड़ित या प्रताड़ित किया जाता था। दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, अशिक्षा जैसी सामाजिक कुरीतियाँ नगण्य थीं। स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह समाज में अग्रणी, तेजस्विनी, विदुषी और सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने वाली, परिवार में मुख्य भूमिका निभाने वाली, स्वाभिमानिनी व निर्भीक हुआ करती थीं।

राजनीतिक स्थिति

ऋग्वेद की नारी राष्ट्र का उत्तरदायित्व वहन करने वाली नागरिक है। राष्ट्रीय महत्त्व की गतिविधियों में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वे युद्धों में भाग लेती थीं और सैन्य संचालन भी करती थीं। अथर्ववेद में इंद्राणी का आदर्श सेनानी के रूप में चित्रण किया गया है। वह अजेय है। सेना के आगे चल कर नेतृत्व करती है।[xxxviii] इंद्राणी शत्रु-सेना का संहार कर राष्ट्र की रक्षा करती है। वह शिव के पिनाक की भाँति प्रचण्ड धनुष को धारण करती हुई प्रयाण करती है।[xxxix] खेल ऋषि की पत्नी विश्पला अपने पति के साथ युद्ध में गयी थी। वहाँ युद्ध के दौरान उसकी जंघा क्षतिग्रस्त हो गयी। अश्विनीकुमारों ने उसके कृत्रिम जाँघ लगायी थी।[xl] मुद्गला शत्रुओं पर आक्रमण करके एक हज़ार गौएँ जीत लायी थी। वृत्रासुर की माता दनु अपने पुत्र के साथ युद्ध में गयी थी। वह इन्द्र के हाथों वीरगति को प्राप्त हुई।

वैदिक आख्यान के अनुसार जब पणि लोग बृहस्पति की गौएँ उठा ले गए तो इन्द्र ने इस विषय में जाँच-पड़ताल के लिए सरमा को नियुक्त किया था। कुशल गुप्तचर का दयितत्व निर्वाह करते हुए सरमा ने गायों का पता लगा लिया। व्यवहार कुशल राजदूत की भाँति सरमा ने इंद्र के पराक्रम का परिचय देते हुए पणियों को गायें लौटा कर संधि करने को प्रेरित किया।

इस प्रकार वैदिक नारी कठिन से कठिन परिस्थितियों में अपने दायित्व का निर्वहन कर अपनी योग्यता प्रमाणित करती है। वह राजनीतिक रूप से सशक्त है। वह पुरुषों की भाँति ही शौर्यशालिनी है। वह युद्धों में भाग लेती है, सेनाओं का नेतृत्व करती है और पुरुषों की भाँति ही वीरगति भी प्राप्त करती है।

BODHIVRUKSHA JOURNAL OF DIVERSE DISCIPLINE
E-ISSN : 3139-1486
An Open Access, Peer-Reviewed, Multidisciplinary Scholarly Journal
Bi-monthly | Multilingual (English, Hindi, Marathi) | Academic Research
@2026 Volume 2, Issue 4 (July-August) https://bjddjournal.org/ (E-ISSN : 3139-1486)

आध्यात्मिक स्थिति

दैवी रूप में जहाँ नारी ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति है, वहीं लौकिक रूप में जीवन के विविध दायित्वों को निभाने वाली सूत्रधार भी है, जिसकी सामर्थ्य से सृष्टि चक्र संचालित है। ऋग्वेद में नारी के विविध मानवीय रूपों का, उसके अधिकार और कर्तव्यों का यत्र-तत्र चित्रण हुआ है। ऋग्वैदिक नारी के गौरव का मूलाधार तत्कालीन स्त्री-शिक्षा का प्रचलन था। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती थीं। प्रारम्भ में पुत्रों की भाँति पुत्रियों का भी उपनयन संस्कार होता था फिर वे ब्रह्मचारिणी के रूप में शिक्षा प्राप्त करती थीं। इस प्रकार वे अपनी शारीरिक और बौद्धिक शक्तियों को विकसित करती हुई, संस्कृति और धर्म के उन समस्त उपकरणों से अपनी व्यक्तिगत रुचियों और क्षमताओं के आधार पर दो वर्गों में विभक्त थीं -1. ब्रह्मवादिनी वर्ग, 2. सद्योद्वाहा वर्ग

प्रथम वर्ग में उनकी गणना होती थी जो विवाह एवं गार्हस्थ्य जीवन का विचार त्याग कर आजीवन विद्याध्ययन करती हुई अनवरत तपश्चर्या एवं अनुशासन का जीवन व्यतीत करती थीं। द्वितीय वर्ग के अंतर्गत वे स्त्रियाँ थीं जो विवाह के पूर्व तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती हुई विद्याध्ययन करती थीं और तत्पश्चात वे विवाह कर गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होती थीं।

वैदिक साहित्य में अनेक विदुषियों के उल्लेख मिलते हैं जो पुरुषों की भाँति ही अपने-अपने विषय में पारंगत थीं। इनमें लोपामुद्रा (ऋग्वेद 1/179), विश्ववारा (ऋग्वेद 5/28), सिकता (ऋग्वेद 28/91), निशवरी (ऋग्वेद 9/81) और घोषा (ऋग्वेद 10/39) आदि ने तो ऋषियों की भाँति ऋचाओं की भी रचना की।

ऋग्वेद में ऐसी 24 ऋषिकाओं का उल्लेख है। इन्होंने वैदिक मंत्रों का दर्शन किया था। इनके द्वारा दृष्ट मंत्रों की संख्या 224 है। इन ऋषिकाओं के सूक्तों का सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक महत्त्व है। वाक् आम्भृणी का वाक्सूक्त भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से, कामायनी का श्रद्धासूक्त मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, रोमशा ब्रह्मवादिनी का सूक्त आध्यात्मिक दृष्टि से, इंद्राणी का सूक्त सामाजिक दृष्टि से तथा सूर्या सावित्री का सूक्त सांस्कृतिक दृष्टि से आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने वैदिक काल में थे।[xli]

अतः कह सकते हैं कि वैदिक कालीन समाज में स्त्री का आध्यात्मिक दृष्टि से भी पुरुषों के समकक्ष ही स्थान था। वे वेदाध्ययन करती थीं। ऋषियों की भाँति जटा-जूट और वल्कल धारण करती थीं। वे मंत्रदृष्टा ऋषिकाएँ भी होती थीं। जिस तरह पुरुषों के दो वर्ग हुआ करते थे उसी तरह स्त्रियों के भी ब्रह्मवादिनी और सद्योद्वाहा दो वर्ग हुआ करते थे।

निष्कर्ष

वैदिक कालीन समाज में ज्ञान-विज्ञान का जो स्वर्णिम वैभव दृष्टिगोचर होता है उसमें स्त्रियों का योगदान पुरुषों से किसी भी तरह कमतर नहीं है। वह प्रत्येक स्थिति में पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चलती दिखायी देती है। उस समाज में नारी के प्रति भेदभाव की स्थिति नगण्य है। उसकी शिक्षा-दीक्षा पुरुषों की तरह होती है। उसके सामाजिक और पारिवारिक अधिकार और उत्तरदायित्व भेदभावपूर्ण नहीं हैं। उसे विवाह में सहमति या असहमति देने का ही अधिकार नहीं है अपितु अपना वर स्वयं चुनने का अधिकार भी है। परिवार में वह एक साम्राज्ञी के रूप में प्रतिष्ठित है। परिवार में वह किसी भय या दवाब में नहीं रहती है। परिवार में पुत्र-पुत्रियों में भेदभाव नहीं है। दोनों को समान वात्सल्य और लाड़-दुलार प्राप्त है। समाज में भी नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह सभाओं में जाती है। उसके लिए पातिव्रत्य की व्यवस्था है तो पुरुषों के लिए एकपत्नीव्रत की। सामाजिक नियमों का उल्लंघन करने पर स्त्री के समान पुरुषों को भी हेय दृष्टि से देखा जाता है। राजनीतिक दृष्टिकोण से भी नारी का समाज में महत्त्वपूर्ण योगदान है। वह युद्ध कर्म, सैन्य संचालन, दूतकर्म, गुप्तचर आदि कलाओं में निपुणता रखती है। आध्यात्मिक दृष्टि से भी स्त्रियाँ पुरुषों से किंचितमात्र भी कम नहीं हैं। वे पुरुषों की तरह वेदाध्ययन, कर्मकाण्ड, तपश्चर्या, और मंत्र-चेतना की दक्षता रखती हैं। वैदिक समाज का हमारे वर्तमान समाज के लिए यही अवदान है कि कोई समाज तभी पूर्ण

BODHIVRUKSHA JOURNAL OF DIVERSE DISCIPLINE
E-ISSN : 3139-1486
An Open Access, Peer-Reviewed, Multidisciplinary Scholarly Journal
Bi-monthly | Multilingual (English, Hindi, Marathi) | Academic Research
@2026 Volume 2, Issue 4 (July-August) https://bjddjournal.org/ (E-ISSN : 3139-1486)

उत्कर्ष को प्राप्त कर सकता है जब स्त्री और पुरुष दोनों ही अपनी सम्पूर्ण सकारात्मक क्षमताओं का सामाजिक उत्थान के लिए उपयोग करें। क्योंकि दोनों में एक ही परमात्म तत्त्व चेतना रूप में विद्यमान है।

विडम्बना यह रही कि अब तक की शिक्षा प्रणाली ने हमें हमारी इन्हीं जड़ों से दूर करने का काम किया। और शेष कमी सिनेमा जगत ने पूरी कर दी है जो हमारी इन कथाओं को मसालेदार और विकृत बना कर समाज को परोस रहा है। इन सब के बीच आशा की किरण यह है कि हमारी नयी शिक्षा नीति 2020 श्रेष्ठ मानव के निर्माण पर बल दे रही है और जड़ों से जोड़ने की बात कर रही है। अपेक्षा है कि वैदिक साहित्य को पाठ्यक्रम का अंग बनाया जाये। और वैदिक साहित्य में खोज-खोज कर नकारात्मकता गढ़ने की मनोवृत्ति की जगह सकारात्मकता को आत्मसात करने की मनोवृत्ति को विकसित किया जाये। क्योंकि वस्तुतः वेद विज्ञान और आध्यात्म दोनों के संवाहक हैं और विश्वगुरु भारत को यही 'विज्ञात्म' की संस्कृति अपेक्षित है। अतः-

हे भारत!

हे विश्व गुरु!!

बारूद के ढेर पर बैठे विश्व की दयनीयता पर दृष्टि पात कर!

कातर और कराहती मानवता के आर्तनाद को सुन!

विज्ञान के थोथे व भोगवादी दर्शन की निरर्थकता को जान!

विज्ञान और अध्यात्म को विनाश की अग्नि से बचा!

अंधे व लंगड़े की कहानी को चरितार्थ कर!

विज्ञान के पैर व अध्यात्म की आँखों वाली,

"विज्ञात्म" संज्ञा की अपनी वैदिक संस्कृति को पुनः आत्मसात कर!

उठ! जाग!! और विश्व का नेतृत्व कर!!!

तभी बच सकेगा तू,

तेरी संतति,

और यह अखिल विश्व।

[i] टॉड, कर्नल, राजस्थान का इतिहास, भाग 1, पृ॰ 276।

BODHIVRUKSHA JOURNAL OF DIVERSE DISCIPLINE
E-ISSN : 3139-1486
An Open Access, Peer-Reviewed, Multidisciplinary Scholarly Journal
Bi-monthly | Multilingual (English, Hindi, Marathi) | Academic Research
@2026 Volume 2, Issue 4 (July-August) https://bjddjournal.org/ (E-ISSN : 3139-1486)

[ii] अथर्ववेद 6/5/10;
[iii] पाण्डेय, विमलचन्द्र (2018): '*भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास*', हिन्दुस्तानी एकेडेमी उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
[iv] ऋग्वेद 3/31/1-2
[v] ऋग्वेद 8/31/8
[vi] ऋग्वेद 6/75/5
[vii] बृहदारण्यक उपनिषद 6/4/27
[viii] ऋग्वेद 10/85/40-41
[ix] अथर्ववेद 5/17/2, 14/2/3-4
[x] ऋग्वेद 9/66/8, 10/71/11, 1/92/4
[xi] ऋग्वेद 10/85/22, 10/27/12, 10/85/29-37
[xii] ऋग्वेद 1/35/7
[xiii] ऋग्वेद 10/27/12
[xiv] ऋग्वेद 10/85/34-36
[xv] ऋग्वेद 1/66/3
[xvi] ऋग्वेद 3/53/4
[xvii] ऋग्वेद 1/117/7, 2/17/7, 10/39/3
[xviii] अथर्ववेद 1/14/3
[xix] ऋग्वेद 5/61/17-19
[xx] ऋग्वेद 1/112/19
[xxi] पाण्डेय, विमलचन्द्र (2018): '*भारतवर्ष का सामाजिक इतिहा*', हिन्दुस्तानी एकेडेमी उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, पृ॰ 137
[xxii] ऋग्वेद 8/1/34
[xxiii] ऋग्वेद 10/33/1
[xxiv] गीता अध्याय 3 श्लोक 21
[xxv] ऋग्वेद 10/85/46
[xxvi] ऋग्वेद 10/85/46
[xxvii] अथर्ववेद 14/1/50-51
[xxviii] ऋग्वेद 1/83/3
[xxix] ऋग्वेद 10/85/47
[xxx] त्रिपाठी, चंद्रबली (1871), '*भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास*' दुरगवाती प्रकाशन गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, पृ॰ 18।
[xxxi] ऋग्वेद 1/124/7, 4/3/2, 10,71/4
[xxxii] ऋग्वेद 10/84/42, 10/85/46
[xxxiii] ऋग्वेद 10/85/33
[xxxiv] ऋग्वेद 10/85/26
[xxxv] अथर्ववेद 2/36/1

BODHIVRUKSHA JOURNAL OF DIVERSE DISCIPLINE
E-ISSN : 3139-1486
An Open Access, Peer-Reviewed, Multidisciplinary Scholarly Journal
Bi-monthly | Multilingual (English, Hindi, Marathi) | Academic Research
@2026 Volume 2, Issue 4 (July-August) https://bjddjournal.org/ (E-ISSN : 3139-1486)

[xxxvi] मम पुत्रा: शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट। उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तम: ॥-ऋ० 10/159/3 ॥
[xxxvii] मिल (20 सितंबर 2015) हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भा०2, Palala Press, यूनाइटेड स्टेट्स, पृ० 41
[xxxviii] प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं प्रिणतो गृहान्। इंद्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः॥ - अथर्व० 1/27/4 ॥
[xxxix] अथर्ववेद 1/27/4
[xl] चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परित्वम्यायाम्।
सद्यो जंघामायसीं विश्पलायै धने हिते सतर्वे प्रत्यधत्त्म्॥ -ऋ० 1/116/15
[xli] जोशी, मोतीलाल; डॉ० रामकुमार दाधीश (2001) संस्कृत वांगमय में नारी और वैदिक नारी चेतना, देवनागर, प्रकाशन, जयपुर,पृ० 37-38